Artistic Narration, Vol. VIII, 2017: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247*Impact Factor 3.9651 (ICRJIFR)*
UGC Approved Journal No. 43285

लोकगीतों की यात्रा (प्राचीनकाल से आधुनिकता की ओर)

डॉ0 गरिमा अग्रवाल
संगीत विभाग, आई0एन0पी0जी0 कालिज,मेरठ।

शोधपत्र का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

डॉ0 गरिमा अग्रवाल,
''*लोकगीतों की यात्रा (प्राचीनकाल से आधुनिकता की ओर)*'',
Artistic Narration 2017, Vol. VIII, No.1, pp. 87- 99
http://anubooks.com/?page_id=2325

सारांश

लोकगीत 'लोक तथा गीत दो शब्दों के संयोग से बना है। जिसका अर्थ है लोक के गीत मानव ह्रदय का भावविलास जब लयात्मक आरोह–अवरोह में भाषाबद्ध होकर प्रवाहित होने लगता है तो वह गीत बन जाता है। लोकगीत विराट मानव जीवन का मुस्कुराता हुआ नैसर्गिक प्रसून है जो जनमानस का मनोरंजन करता है। लोकगीत उतने ही प्राचीन है जितना मानव का जीवन। लोकगीतों का उद्गम शहर की चकाचौंध में नहीं अपितु गांव की प्राकृतिक सम्पदा की पृष्ठभूमि में होता है। लोकगीतों के निर्माण की प्रक्रिया में सदैव समुदाय से अधिक समुदाय का व्यक्ति सक्रिय रहा है जिसका न कोई निर्माता है न स्वरसंघाता। वह जैसे मानव समुदाय में सहज की स्वयं उद्धरित हो उठा है।

लोकगीतों के विकास की परम्परा भारत वर्ष में अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टि के आरम्भ से ही इसकी परम्परा रही है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान–स्थान पर पाया जाता है उन्हें लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता है। मध्यकाल में कबीरदास सूरदास, जायसी, आदि सभी ने समय समय पर लोकगीतों का वर्णन किया है। प्राचीन और मध्यकाल में लोकगीत पुष्पित और पल्लवित हुए तथा आधुनिक काल में लोकगीतों का निरन्तर विकास हुआ जो जनमानस की विभिन्न भावनाओं को अभिव्यक्त करते रहे हैं। आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव कितना ही प्रबल क्यों न हो गया हो लेकिन यह सत्य है कि मानव मन की सहज भावनाओं, आवेगों की सुगन्ध लोकगीतों के उपवन में ही प्रस्फुटित होती है।

महत्वपूर्ण शब्दः *लोकगीत, जनसाधारण, ग्राम्य, अभिव्यक्ति, भावनात्मक, मानव मन, घरेलु, सहज, नैसर्गिक, निश्छल, संवेदनशील, उदगार, सामूहिक, मौखिक, सराबोर, विकास, स्वभाविक, गली चौपालों, परम्परा, गाथा, वास्तविक स्वरूप, पौराणिक, मनोहर, सुमधुर, व्यापकता, आनन्द, उल्लास, अवसर, अनायास, प्रवाहित*

प्रस्तावना

लोकगीत 'लोक' तथा 'गीत' दो शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ लोक के गीत। 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।[1] 'लोक' शब्द वास्तव में अंग्रेजी के 'फॉक' का पर्याय है जिसका अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई समस्त साधारण जनता का परिचायक है।[2] इसी प्रकार गीत शब्द का अर्थ प्रायः उस कृति से है तो गेय हो। लोकगीत में गेयता का होना आवश्यक है। मानव की उपलब्धियों में गीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव जब अपने ''सुख–दुःख की अभिव्यक्ति के लिए विवष होकर शब्द का आश्रय लेता है तो ये सुख–दुःख गीत के रूप में फूट पड़ते हैं। गीत का मानव के स्वाभाविक, भावनात्मक स्पन्दनों से सम्बन्ध है। महादेवी वर्मा का भी कहना है कि 'सुख दुःख का भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही 'गीत' है।[3] गीत जन्म से लोक की सम्पत्ति है एवं लोक जीवन ही उसकी टकसाल।''

मानव हृदय का भाव–विलास अपनी उत्कंट स्थिति में लयात्मक आरोहावराहो में जब भाषाबद्ध होकर प्रवाहित होने लगा तो शब्द शास्त्रियों ने उसे गीत कहा और इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों में (घरेलु भाषा) लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया। 'लोकगीत' शब्द में गायन का भाव सहज ही सामने आता है, अर्थात् उसका सम्बन्ध संगीत से सीधे जुड़ता है। इसी कारण लोकगीत को **''स्वतः स्फूर्त संगीत'' कहा गया है।**[4] लोकगीत वह गीत रहे है जिससे जनमानस का अनुरंजन सदा से होता रहता है।

लोकगीत विराट मानव जीवन का मुस्कराता हुआ नैसर्गिक प्रसून है। जो व्यक्ति विशेष द्वारा रचित गीत को एक दूसरे के कंठ से उतारता हुआ परिवर्तित और परिवर्धित रूप धारण करता है तभी वह लोकगीत कहलाता है। इसका जन्म मानव हृदय के निश्छल स्वच्छन्द विचारों से होता है जो जन–जीवन के समस्त पहलुओं को दर्शाता हुआ विशिष्ट स्वरानुभूति से निर्मित हो, तथा जो जनमुख से गाये जाते हो वह लोकगीत कहलाते हैं। सामान्यतः जनता के संवेदनशील व भावुक हृदय के स्वभाविक उद्‌गार जो संगीत की बलवती धारा के रूप में छन्दोबद्ध होकर प्रभावित हो उठते हैं लोकगीत का नाम प्राप्त करते हैं।

लोकगीत वे गीत हैं जो गाँवों और देहातों में जनसाधारण द्वारा सामूहिक रूप से गाए जाने वाले लय प्रधान गीत, जो समाज में कई वर्षो से अर्थात् परम्परागत रूप में प्रचलित रहे हैं, जिनका प्रचार मौखिक है, तथा जिन्हें स्थल, काल एवं विषय की मर्यादा नहीं है। रचयिता का निर्देश महत्त्वपूर्ण नहीं है, और प्रायः वह अज्ञात है अतएव लोकगीतों को 'अपौरूषेय' भी कह सकते हैं।[5]

''लोकभाषा के माध्यम से स्वर और लय के संगीतात्मक आवरण में लिपटी हुई सामान्य जनसमुदाय के हार्दिक रागाराम से पूर्ण भावानुभूतियाँ लोकगीत कहलाती हैं।''[6]

लोकगीतों को सामान्य अर्थ में परिभाषित करने के पश्चात् लोकगीत की परिभाषा को विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार परिभाषित किया है।

भारतीय विचारकः

भारतीय विचारकों ने अपने–अपने विचारों के अनुरूप लोकगीत की परिभाषायें दी है–

सूर्यकरण पारीकः नरोत्तमस्वामी ''आदिम मनुष्य के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करूणा की, उसकी रूदन की, उसके समस्त सुख–दुःख की कहानी इनमें चित्रित है।''[7]

डॉ0 कुंज बिहारी दास – जिन गीतों में मानव जीवन के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, आशा–निराशा आदि की अभिव्यंजना रहती है, उन्हें लोकगीत कहते हैं।[8]

पाश्चात्य विचारक :

पाश्चात्य विचारकों ने अपने–अपने विचारों के अनुरूप लोकगीत की परिभाषायें दी हैं–

ग्रिम– "A Folk Songs composes green itself**"** (लोकगीत तो स्वतः जन्मा है)[9]

पेरी– "The Primitive spontaneous music has been called Folk music**"** (लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है)[10]

राल्फ वी0 विलियम्स– "A Folk Song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits,[11]

''लोकगीत उस जनसमूह की संगीतमयी काव्य रचनाएँ हैं जिसका साहित्य लेखनी अथवा छपाई से नहीं, वरन् मौखिक परम्परा से अविरल प्रवाहमान रहता है।''[12] लोकगीत व्यक्ति विशेष की धरोहर न होकर भारतीय संस्कृति की एक अनूठी धरोहर है जो कि प्राकषतिक सौंदर्य में डूबी, काव्य रस से ओतप्रोत, स्वर लय से सराबोर हृदय के तल से उभर कर सर्वथा मनोहारी लगते हैं जो कि विविधता में एकता का साक्षात् प्रतीक है। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोकगीतों के रसोद्रेक का उल्लेख करते हुए अपना मत व्यक्त किया है– ''लोक के साथ सम्पर्क में रहकर हमारे जीवन में रूके हुए स्रोत फूटकर बहने लगेंगे और रस–ग्रहण करके टूटे हुए तन्तु फिर अपने तार से जुड़ सकेंगे।''[13] सच पूछा जाये तो लोकसंगीत हमारी अमूल्य निधि है जिसके भीतर हमारा इतिहास झलकता है।

किसी भी चीज के विकास को जानने के लिये सर्वप्रथम उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई यह जानना आवश्यक होता है। अतः लोकगीत की उत्पत्ति किस प्रकार हुई सर्वप्रथम इसकी विवेचना करेंगे।

लोकगीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न सभी के मन में उठते होंगे जैसे लोकगीतों का जन्म कैसे हुआ? कहाँ हुआ? कब हुआ? इनके रचनाकार कौन हैं? देवेन्द्र सत्यार्थी ने भी यही प्रश्न उठाया है, ''कहाँ से आते हैं इतने गीत? स्मरण विस्मरण की आँख मिचौनी से कुछ अट्टाहास से। कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, इस वृत्ति और भावनानी, नष्त्य का सेलोरा भी– पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुःख, ये हैं लोकगीत के बीज।''[14]

लोकगीत उतने ही प्राचीन हैं जितना मानव का जीवन। जब से मानव ने सभ्यता के प्रांगण में अंगड़ाइयाँ लेनी शुरू की तभी से संगीत का भी श्रीगणेश हुआ होगा। लोकगीतों के उद्भव की कोई निध ाारित काल रेखा मानना बड़ा मुश्किल है, परन्तु मौखिक परम्परा के अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में ये निरन्तर असीम अतीत के गर्भ में छिपे उद्गम स्रोत की ओर इंगित करते हैं।

लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ0 सत्येन्द्र ने कहा है– ''जब लोक मानस आनन्द से गद्गद् हो उठता है या वेदना का स्रोत प्रवाहित होने लगता है तो स्वतः प्रेरित भावलहरियाँ लोकमानस से प्रवाहित होने लगती हैं– ये ही लहरियाँ लोकगीत नाम से अभिहित होती हैं– न इनकी रचना का कोई स्वरूप है न नियमावली। न ही लोकगीतों के मूल रचयिता का पता है।''[15] ष्याम परमार कहते हैं कि ''नए गीतों के साथ पिछले घुलते जाते हैं। नई पीढ़ी नए भाव, यहीं गीतों की परम्परा है।''[16]

लोकगीतों का सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वाभाविक रीति से होता है, वह किसी निश्चित एवं नियन्त्रित संगीतात्मक अथवा साहित्यिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है। इसमें जीवन की सहज क्रियाओं द्वारा व्यापारों में लीन जन–समुदाय के निश्छल, सरल और स्वाभाविक भाव गीतों के बोल बनकर उनके कंठ स्वर में तैरने लगते हैं। हल चलाते हुए, पशु चराते हुए, चक्की पीसते हुए, बर्तन माँजते हुए प्रत्येक सामान्य कार्य–व्यापार के समय इन गीतों का उदय हुआ है।[17] जर्मनी के सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्रवेत्ता विलियम ग्रिम ने भी इसी बात का समर्थन करते हुए अपने 'सामूहिक उत्पत्ति' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए यह सिद्ध किया है कि 'लोकगीत व्यक्ति विषेश के द्वारा नहीं अपितु सामूहिक रीति अथवा विशाल जनसमूह द्वारा निर्मित होते हैं। इनका अस्तित्व समय के आधार तल पर टिका रहता है।[18]

लोकगीतों के निर्माण की एक पद्धति यह भी कही जा सकती है कि जब कई महिलाएँ एक साथ गली–चौपालों के चबूतरों पर बैठकर लोकगीतों के निर्माण का कार्य करने लगती हैं तो अपने धुन में लीन गुनगुनाती हुई एक ही गीत की पंक्ति को बार–बार दोहराती रहती हैं तो कई बार ऐसा होता है कि उस पंक्ति को बार–बार सुनते हुए दूसरी महिला एक और पंक्ति रच डालती है और तीसरी महिला उससे अगली पंक्ति। इस प्रकार एक लोकगीत तैयार हो जाता है और वे महिलाएँ मिलकर सारी पंक्तियों को मिलाती हुई उसे गाने लगती है इस प्रकार लोकगीतों का निर्माण लोक–जीवन की कर्मषाला में होता है और लोक जीवन ही इन्हें सुरक्षित रखता है।

लोकगीतों का उद्गम शहर की चकाचौंध में नहीं, अपितु गाँव की प्राकृतिक सम्पदा की पृष्ठभूमि में होता है। इनकी उत्पत्ति पर अपना मत व्यक्त करते हुए गुजराती विद्वान झबेरचन्द मेघाणी 'रूढ़ियाली रात' में लिखते हैं कि ''जिस प्रकार हरे जंगलों में पंछी अपने आप गा उठते हैं, वैसे ही लोकगीत स्वाभाविक रूप से हृदय से फूट पड़ते हैं।''[19]

विशप पर्सी कहते हैं कि लोकगीतों की रचना चारण या भाटों के द्वारा हुई, जो प्राचीन काल में ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भीख माँगते थे।[20] जर्मन विद्वान श्लेगल लोकगीतों को व्यक्ति विशेष की रचना मानते हैं। जबकि डॉ0 फ्रान्सिस चाइल्ड का कहना है कि लोकगीतों में व्यक्ति विशेष की वाणी तो मिलती है, उसका व्यक्तित्व नहीं मिलता।[21] इस प्रकार लोकगीतों में 'अहं' की भावना न होकर परोपकारी भावों की बाहुल्यता होती है कई बार तो इसमें संस्कृति के महानगुणों का निर्वाह इतने सहज

भाव से हो जाता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। लोकगीत स्वान्तःसुखाय की भावना से परे बहुजनहिताय की भावना से ओतप्रोत रहता है जिसका निर्माण सामूहिक तथा व्यक्तिगत दोनों आधार पर होता है। इनके निर्माण की प्रक्रिया में सदैव, समुदाय से अधिक समुदाय का व्यक्ति सक्रिय रहा है, जिसका न कोई निर्माता है, न स्वर– संधाता। वह जैसे मानव समुदाय में सहज ही स्वयं ही उद्धरित हो उठा है। अतः हम कह सकते हैं कि लोकगीत का उद्‌भव जनमानस के हृदय में अवतरित हुए भावों के आविर्भाव का चमत्कार है।

सृष्टि के आरम्भ से ही लोकगीत मानव–समाज में घुलकर चले हैं। गीत हो अथवा गाथा, कहावत हो या पहेली, इनके मूल वैदिक, पौराणिक या बौद्ध जैन साहित्य में अवश्य मिलेंगे। कहा जाता है कि समाज के बदलते जीवन मूल्यों तथा तीव्र ऐतिहासिक परिवर्तनों के बावजूद ये गीत समय की सीढ़ियों पर चढ़ते–चढ़ते क्षत–विक्षत अवस्था में भी अति प्राचीन समाज को लेकर आधुनिक युग के समाज तक की कहानी कहते हैं।[22]

''लोकगीतों के विकास की परम्परा, भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन है। सषश्टि के आरम्भ से ही इसकी परम्परा रही है। अनुमान से विदित होता है कि मानव समाज के संगठित होते रहने से लोकगीत पनपे और परम्परा की थाती बनते गये। लोकगीतों का बीज हमारे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान–स्थान पर पाया जाता है, उन्हें लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता हैं पुत्र–जन्म, यज्ञोपवित तथा विवाहादि उत्सवों पर सरस गीत गाए जाने का उल्लेख वेदों में मिलता है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में गीत के रूप में ''गाथा'' शब्द का प्रयोग हुआ है।

''अग्नि भोडिष्वावसे गाथाभिः शरि शोचिशम्।''[23]

गाने वालों के लिए ''गाथिन'' शब्द का प्रयोग किया गया है।

''इन्द्रमिद् गाथिना बृहदिंद्रमर्केभिरार्किणः।''[24]

सायण–भाश्य तथा ऋग्वेद में विवाह–संस्कार के विभिन्न कृत्यों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को ''रैमी'' तथा ''नाराषंसी'' गाथा के नाम से अभिहित किया जाता था, परन्तु ''गाथा'' शब्द का विशिष्ट अर्थ ''रैमी'' और ''नाराशंसी'' से पृथक् निर्दिश्ट किया गया है।

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में भी गाथाओं का वर्णन है ऐतरेय ब्राह्मण[25] में ऋक् और गाथा में पार्थक्य स्पष्ट करते हुए ऋक् को दैवी तथा गाथा को मानुशी बतलाया गया है। इस ग्रंथ के अनुशीलन से यह भी आभासित होता है कि गाथाएँ ऋक्, यजुः और साम से पष्थक होती थीं, अर्थात् किसी राजा के सत्कर्मो की अभिव्यक्ति मंत्र के रूप में न होकर लोकगीतों में होती थी। ये लोकगीत जनता के द्वारा गाए जाते थे और 'गाथा' के नाम से ये प्रचलित थे। यास्क के निरूपण की व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने बताया है कि वैदिक सूक्तों में कहीं–कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है वह कहीं ऋचाओं के द्वारा कहीं गाथाओं में निबद्ध है। पुराणों में भी अनेक गाथाओं का वर्णन मिलता है, जिनका रूप लोकगीतों से मिलता–जुलता नजर आता है। गाथाओं का गायन विशेष रूप से राजसूय यज्ञ के अवसर पर ही होता था परन्तु ''मैत्रायिणी संहिता'' में विवाह के षुभ अवसर पर गाथाओं के गायन का प्रमाण प्राप्त होता है।[26]

लोकगीतों का वास्तविक स्वरूप संस्कष्त से अधिक पाली, प्राकृत आदि जन भावनाओं में निखरा है। पाली जातकों के अनुशीलन से पाली भाशा में उपनिबद्ध गाथाओं का पता चलता है, जो प्राचीन काल से प्रचलित थीं और जिनमें उस काल की विख्यात लौकिक कहानियों एवं घटनाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कथाएँ जो जातक कहलाती हैं–गाथाओं के पल्लवीकरण से ही आविर्भूत हुई है।

विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी के समय में प्रचलित प्राकृत भाशा एवं साहित्य में भी लोकगीतों का प्रचलन था, लोकगीतों की उन्नति बड़े जोर–शोर से हुई। प्राकृत भाषा में राजा 'हाल' या 'शालिवाहन' के द्वारा सम्पादित 'गाथा सप्तशतीं' से इसकी पुश्टि होती है। 'डॉ0 तेजरानायाण के अनुसार वर्तमान समय में सात सौ गीत (गाथा) इस भाशा में प्राप्त है।[27] गाथा सप्तशती में सात सौ गाथाएँ संग्रहीत हैं।[28] इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय के समाज में लोक–काव्य–सृजन एवं गाने की रूचि अत्यन्त तीव्र थी। प्रत्येक गीत (गाथा) जन–जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालता है।

अपभ्रंश काल में भी लोकगीतों का विकास चरम सीमा तक पहुँचा है। डॉ0 सत्यव्रत सिन्हा का यह मत है कि, अपभ्रंशकाल में लोक तत्वों एवं लोक–जीवन को स्पर्श करता हुआ ग्रंथ **'सन्देशरासक'**[29] अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है।

संवत 1150–99 में जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन के अन्तर्गत प्राचीन अपभ्रंश के दोहे हैं। जिसके अन्तर्गत युद्ध के दौरान मृत पति के प्रति पत्नी के अन्तर्मन में उत्पन्न वीरता और देशभक्ति तथा पति के पौरूष का गुणगान है।

हिन्दी के आदिकाल में अपभ्रंश से चली हुई 'रासक' परम्परा से ही 'रासो' का जन्म हुआ है।[30] 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने 'रासक' को एक साहित्यिक गेय रास माना है।[31] इसका आधार प्रायः लोक कथाएँ हुआ करती थीं, जिसका उदाहरण 'नरपति नाल्ह' की रचना 'बीसलदेव रासो' में भी मिलता है। हिन्दी के आदिकाल को तो हम लोकसाहित्य का ही विकसित रूप समझें तो अतिशयोक्ति नहीं है। 'संदेश रासक', 'ढोला मारू रादूहा' आल्हा (परमालरासो) आदि सभी रचनाएँ लोकगीतों की सबल परम्परा के प्रमाण है।

वैदिक युग के पश्चात् महाकाव्य एवं पौराणिक युग में भी लोकगीतों की विकास परम्परा दिखाई देती है। वेदव्यास जी कष्त 'श्रीमद्भागवत्' में कृष्ण–जन्म के पावन अवसर पर स्त्रियों द्वारा एकत्र होकर मंगलाचार गाने का उल्लेख है–

गोकुल को आनन्द अति कापै बर्णो जाय।
जहाँ परम आनन्दमय लियो जन्म हरि आय।।[32]

इसी विचार क्रम का परिचय वाल्मीकि रामायण में राम–जन्म के षुभ अवसर पर गन्धर्वो द्वारा गायन एवं अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में अज के जन्मोत्सव के अवसर पर राजा दिलीप के भवन में वेश्याओं द्वारा नृत्य करने तथा गायन व वाद्य प्रस्तुत करने का वर्णन किया है।

संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्री 'विज्जिका' ने धान कूटने वाली स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीत का अत्यन्त मनोहर एवं सरस रूप में वर्णन किया है। स्त्रियाँ धान कूट रहीं हैं, साथ ही गीत भी गाती जा रही हैं। मूसल उठाने एवं गिराने के साथ उनकी चूडियों से झंकार उठ रही है। श्रम–प्रयास के कारण उनका अंग–अंग गतिशील हो उठा है। गीतों के स्वर चूड़ियों की झंकार से मिलकर अनुपम आनन्द की सृष्टि कर रहे हैं। इसी प्रकार महाकवि श्री हर्ष ने चक्की चलाती हुई स्त्रियों का उल्लेख किया है। स्त्रियाँ सत्तू पीस रही हैं जिसकी सुगन्ध पथिकों को आर्कषण कर लेती है। चक्की चलाते समय स्त्रियाँ गीत गाती हैं।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भी पर्याप्त लोकतत्वों का समावेश है। कबीरदास जी 'कबीर ग्रंथावली' में परमपुरूष से अपने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवाह के रूपक द्वारा करते हुए कहते हैं कि हे सौभाग्यवती नारियों! तुम विवाह के मंगल गीत गाओं, आज मेरे घर पर स्वामी राम– परमप्रभु आये हैं।

दुलहनीं गावाहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।।टेक।।[33]

इसी भाँति सूरदास जी ने अन्नप्राशन उत्सव पर लोकरीति का वर्णन 'सूरसागर' में किया है।

आजु कान्य करिहै अनप्राशन।[34]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस में अनेक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा मंगल गान करने का उल्लेख किया है। राम जन्म, सीता का गौरी पूजन, सीता स्वयंवर, सीता राम विवाह इत्यादि समस्त अवसरों पर स्त्रियाँ सुमधुर गीतों का गायन करती हैं। इस प्रकार तुलसीदास जी ने लोकगीतों की व्यापक महत्ता का प्रदर्शन किया है।

राम–विवाह के अवसर पर बारात को भोजन कराते समय स्त्रियों द्वारा जेवनार तथा गाली गाने का उल्लेख भी उन्होंने किया है।

जेवत देहि मधुर धुनि गारी।
लै लै नाम पुरुष अरू नारी।।[35]

गाली गाने की प्रथा हिन्दू समाज में अभी तक चली आ रही है। अपने काव्य में तुलसीदास जी ने लोक रीतियों का वास्तविक चित्रण उपस्थित किया है। लोकरीतियों के सम्यक् निरूपण के समय लोकगीतों को महत्व देना स्वाभाविक ही था। 'जानकी मंगल' एवं 'पार्वती मंगल' में समस्त वैवाहिक रीतियों एवं विधियों सहित क्रमशः राम–सीता एवं शिव–पार्वती के विवाह का वर्णन है। इनमें रीति के अनुकूल गीत गाए जाने का सर्वत्र उल्लेख प्राप्त होता है।

'जायसी' ने भी अपने महाकाव्य में पद्मावती के जन्म के समय का वर्णन करते हुए छठी के दिन का वर्णन किया है –

भइ छठि राति सुख मानी। रहस कोड सो रैनि बिहानी।
भा विहान पंडित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए।।[36]

राजस्थान में 'ढोला मारूरा दूहा' एक लोकगीतात्मक काव्य है। जगनिक का आल्ह खण्ड भी लोकगीत की प्रवषतियों का प्रतीक है। अपने मौलिक रूप में वह जैसा भी रहा हो, लोक कण्ठ से निःसृत होकर वह लोकगीत की परम्परा में आ गया है।

अब तक हम चर्चा कर चुके हैं कि प्राचीन और मध्य काल में लोकगीत किस प्रकार पुश्पित और पल्लवित हुए। आधुनिक काल में भी लोकगीतों का निरन्तर विकास हुआ है, जो जनमानस की विभिन्न भावनाओं को अभिव्यक्त करते रहे हैं। आज भारतीय संस्कषति पर पाष्चात्य संस्कृति का प्रभाव कितना कि प्रबल हो गया हो पर यह भी सत्य है कि मानव मन की सहज भावनाओं आवेगों की सुगन्ध लोकगीतों के उपवन में ही प्रस्फुटित होती है। आज भी जीवन के विविध संस्कार चाहे जन्म हो, मुण्डन हो, नामकरण संस्कार हो, विवाह हो, उसकी विभिन्न प्रथाएं हों, प्रत्येक अवसर पर ढोलक की थाप के साथ गूँजते महिलाओं के स्वर पूरे वातावरण को आनन्द और उल्लास से भर देते हैं इतना ही नहीं आज के लोकगीत इंसान के सपनों को भी स्वर देते हैं। जैसे –

लाड़ो मांगन हो सोई माँग राम रथ हांक दिया
लाड़ो बाबा जी खड़े हाथ जोड़ राम रथ हांक दिया।
मै तो माँगू कौशल्या सी सास, ससुर राजा दशरथ से
लाड़ो मांगन हो.....

इसी तरह ससुराल में अन्य किसी सम्बन्धी के साथ न जाने और पति के ही सथ जाने की नारी की सहज भावना.....

भरी दोपहरी मै ना जाऊंगी, डोला पिछवाड़े रख दो
पहला बुलावा मेरे ससुर जी का आया
इस बुढढे के संग में ना जाऊंगी, डोला पिछवाड़े रख दो
भरी दोपहरी मै.....

अथवा पर्दा प्रथा के बीच पति के साथ बात करने की कामनाकृकृकृ

बन्ना नादान, मेरी बन्नी से मिलवा दे री अम्मा
जाली के परदे में दो बात करवा दे री अम्मा

आधुनिक काल में तो लोकगीतों का प्रचलन इतना अधिक हुआ है कि फिल्में भी इससे अछूती नहीं रही। कुछ लोकगीत तो इतने अधिक प्रसिद्व हुए कि उन्हें अपनी फिल्मों में लेने का लोभ संवरण फिल्मकार भी न कर सकें।

बन्ने से बनड़ी जयमाल पे झगड़ी
तू क्यों नहीं लाया रे सौने की तगड़ी.....[37]

इसी प्रकार फिल्म लावारिस का यह गाना इतना प्रसिद्ध हुआ –

मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है
जो है नाम वाला, वो ही तो बदनाम है।

उपर्युक्त गीत कभी इस रूप में लोकगीत में प्रचलित था।

ऐ री छोरी बामन की तेरी कमर मैली हो रही रे
करम फूट गये उन मर्दो के जिनकी जोरू मोटी से
दरवज्जे में फँस गई तो धक्का मुक्की हो रही रे
ऐ री छोरी.....

लोकगीत केवल त्यौहारों को लेकर ही नहीं रचे गये बल्कि शकुन और अपशकुन को लेकर भी रचे गये। सन्ध्या के समय कौए का मुढ़ेर पर बैठकर उड़ जाना षुभ षकुन है और इसे लेकर गीतकारों ने ऐसे गीत रचे कि उन्हें फिल्मों में भी जगह दी गयी जैसे–

उड़ जा काले कावां तेरे मुँह विच खण्ड पावां,
ले जा तू संदेशा मेरा मैं सदके जावां।[38]

दृष्टय है कि इन्हीं भावनाओं को लेकर हमारे साहित्य में भी गीत रचे गये जैसे तुलसी की गीतावली का यह अंश जहाँ कौषल्या कौएँ से कहती है–

दूध–भात की दीनी दैहों, सोने चोंच मढ़ैहों।[39]

लोकगीतों में माँ के मन की व्यथा इस रूप में अभिव्यक्त हो रही है कौशल्या कहती है।

''मोरे राम के भीजै मुकुटवा,
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुखा
त राम घर लौटहिं।[40]

विचित्र बात यह है कि राम वन में मुकुट लगा कर नहीं गये थे फिर भी माँ को चिन्ता है कि राम का मुकुट भीग रहा है। वास्तव में यहाँ मुकुट मर्यादा का प्रतीक है और कौशल्या को चिंता है कि राम की मर्यादा पर किसी भी प्रकार की आँच न आये। स्पष्ट है कि लोकगीतकार केवल सीधी–सीधी बात ही नहीं कहता वरन् सामाजिक आस्थाओं, मान्यताओं और मर्यादाओं की भी उसके गीतों में अभिव्यक्ति होती है। सास और बहू के झगड़े और उनमें बहू की सास से अलग हो जाने और पति के साथ रहने की कामना अनायास ही लोकगीतों में व्यक्त हो उठी है। कुछ लोकगीत तो इतने मार्मिक हैं कि अनायास ही गाने वाले का मन भर आता है और हमारे समाज की बुराइयों और निर्ममताओं को उजागर कर जाता है जैसे सावन में गाया जाने वाला यह गीत.....

गलियों तो गलियों री बीबी मन हरा फिरे....

ननद और भावज का वैमनस्य, शिकायत करने की प्रवृति बहूं पर अविश्वास और फिर उसे मार देना, ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन लोकगीतों के माध्यम से आज भी बहुँओं को जला देने जैसे हृदय द्रावक दृश्य आँखों के सामने साकार हो उठते हैं।

ये लोकगीतकार सामान्यतः अनजान होते हैं। हम नहीं जान पाते कि इन गीतों की रचना किसने

की लेकिन ये भी सच है कि अच्छे–अच्छे साहित्यकार भी लोकमन की इन संवेदनाओं को अपने कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश करते रहे हैं।

दहेज प्रथा का उद्‌गम कहाँ से हुआ इसे लेकर लिखा गया प्रसिद्ध गीतकार भारत–भूशण का गीत 'आम्र जन्म' एक सशक्त उदाहरण है। राखी के अवसर पर मायके से दूर रहने वाली कन्या को मायके की याद किस तरह सताती है और वे किस तरह बादल से, कुछ इसी तरह जैसे कभी यक्ष ने अपनी प्रिया को मेघ के द्वारा संदेश भेजा था, अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए बारी–बारी अपने बाबुल के घर जाने की प्रार्थना करती है।

बदरी बाबुल के अंगना जइयो
जइयो बरसियों कहियों
कहियो कि हम है तोरी बिटियाँ की अँखिया।[41]

स्पष्ट है कि लोकगीतों का यह सफर जनमानस में निरन्तर प्रवाहित होता रहा है। यह बात दूसरी है कि युग के साथ–साथ इनके नामों में परिवर्तन होता गया। वैदिक काल में इसे गाथा कहा गया प्रकारान्तर में इसे ग्रामगीत भी कहा गया। ग्रामगीत कहने का कारण शायद यह रहा हो कि ये गीत ग्रामों में अधिक गाये जाते थे, शनै–शनै इन गीतों की जीवन्तता और सरसता इन्हें शहरों तक भी ले आयी कारण जो सहजता और सरसता लोकशैली में होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। शास्त्रीय संगीत का आनन्द केवल मर्मज्ञ व्यक्ति ही उठा सकते हैं, जबकि लोकसंगीत का आनन्द अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति भी उठा सकते हैं लोकगीत रचने के लिए व्यक्ति को व्याकरण के किन्हीं नियमों में बंधने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए जैसे ही किसी उल्लास के अवसर पर उसका मन उमंग से भर उठता है वह अनायास गुनगुना उठता है और वही गुन–गुनाहट शब्दों में ढलकर लोकगीत का रूप धारण कर लेती है किसी दुःख की अवस्था में उसके आँसुओं का वेग लोकगीतों की धारा प्रवाहित कर देता है और श्रोता उस ध ाारा के साथ बहता चला जाता है। ऐसे अवसरों को हमारे स्थापित कवियों ने भी व्यक्त किया है जैसे –

अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हलदी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल,
हाय! रूक गया यही संसार
बना सिंदूर अँगार,
बात –हत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार।[42]

सुभद्रा कुमारी चौहान की बच्चों की तुतली वाणी की बात करते हुए यह कविता एक अपूर्व भावलोक की सृष्टि कर देती है –

माँ आ कह कर बुला रही थी,
मिट्टी खा कर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में,
मुझे खिलाने आई थी।

और यह लोकगीतों का सफर आज भी निरन्तर प्रवाहमान है। लोकगीतों का विकास मानव विकास की कहानी है यह मानव जीवन के साथ आरंभ होता है और उसके साथ समाप्त होता हैं। जिस प्रकार मानव जीवन को किसी सीमित परिभाषा में बाँधना मुश्किल है, उसी प्रकार लोकगीत को भी किसी नियम में बाँधना कठिन है। लोकगीत मानव जीवन की यथार्थ एवं नैसर्गिक अभिव्यक्ति का असीमित, महत्वपूर्ण एवं सशक्त साधन है।

मानव जीवन की सर्वांग अभिव्यक्ति लोकगीतों का कर्म है। लोक में विकृति, सभ्यता, चिन्तन, सामायिक महत्व एवं मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का वास्तविक प्रतिबिम्ब लोकगीतों में अंकित होता है। जिस एक साहित्यकार जीवन के सुन्दर आदर्श पक्ष की अभिव्यक्ति बहुत ही सहज रूप में करता है लेकिन केवल आदर्श की बात करने से उसका सामाजिक पक्ष कमजोर हो जाता है जबकि लोकगीत जीवन के सुन्दर–असुन्दर दोनों पक्षों की बेलाग निष्पक्ष एवं सहज व्याख्या करता है। स्काटलैण्ड के प्रख्यात देशभक्त फ्लेयर का कहना है कि ''किसी जाति के लोकगीत उसके विधान में भी अधिक महत्वपूर्ण होते है। जब तक मानव जीवन पृथ्वी पर शेष है तब तक लोकगीतों की यह सलिला इसी प्रकार प्रवाहित होती रहेगी। इसी प्राचीनता के सम्बन्ध में पं0 रामनरेष त्रिपाठी जी लिखते हैं– ''जब से पृथ्वी पर मनुष्य हैं, तब से गीत भी है। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन मरण साथ–साथ चलता रहता है कितने ही गीत तो सदा के लिए मुक्त हो गये। कितने ही गीतों ने देश काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली स्वरूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्ष की होगी। वे थोड़े फेर–फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।[43] आधुनिक लोकगीतकार ने समाज के हर परिवर्तन को अपने शब्दों की अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है आधुनिक काल में बाल विवाह प्रथा को बंद करने का प्रयास विभिन्न समाज सुधारको द्वारा किया गया। बाल विवाह का विरोध किसी लोक गीतकार की गीत की इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है जहाँ बेटी अपने परिवार वालों से विवाह न करने का अनुरोध इन पंक्तियों में करती है।

बाबा जी मेरी मत करो शादी, उम्र बारह बरस की है। इतना ही नहीं बन्नी के ऊपर देश–प्रेम का रंग भी पर्याप्त मात्रा में चढ़ा हुआ है इसीलिए वह कहती है– **''लिखाा दो नाम कांग्रेस में बनूँगी सत्यवती देवी''** आधुनिक काल में देश में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया गया। शिक्षा के इस महत्व को लोकगीतकारों ने भी समझा इसीलिए इस लोकगीतकार की बन्नी की इच्छा भी शिक्षित वर पाने की है इसकी इच्छा का जिक्र करता हुआ कहता है **''बी0ए0 पास के लड़के बहुत है एम0ए0 पास वर वो माँगती है।''**

अतः स्पष्ट होता है कि लोकगीतों की सफर प्राचीन काल से आज तक सतत् प्रवाहमान है मानव मन के हर्ष, उल्लास, दुःख दर्द विभिन्न भावनाएँ सब इन लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते रहे

है यही कारण है कि गाँवों से शहरों तक फिल्मों से साहित्य तक प्रत्येक गली में, प्रत्येक घर में समय–समय पर ये लोकगीत जनमानस को आन्दोलित करते रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी लोकगीतों के महत्त्व को समाप्त नहीं कर पाया। ये गीत आज भी निरन्तर हमारी संस्कृति का परचम पूरे विश्व में लहरा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी साहित्य कोष, भाग–1 पृष्ठ–686*
2. *लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – विद्या चौहान पृ0 39*
3. *सान्ध्यगीत की भूमिका– महादेवी वर्मा*
4. *हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन– डॉ0 गुणपाल सिंह सांगवान पृ0–61*
5. *संगीत कला विहार, मार्च 1959, पृ0 117*
6. *मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत – डॉ0 मोहनानन्द झा, पृ0–4*
7. *राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्द्ध)– प्रस्तावना, पृ0 1–2*
8. *संगीत पत्रिका नवम्बर 1982 पृ0–30*
9. *Encyclopaedia Britanika Vol. IX, P. 447*
10. *वही पृ0–448*
11. *वही*
12. *हिन्द स्टैण्डर्ड डिक्षनरी ऑफ फॉकलोर, मैथोलोजी एण्ड लिजिण्ड*
13. *धीरे बहो गंगा– देवेन्द्र सत्यार्थी (आमुख)*
14. *धरती गाती है, पृष्–178*
15. *लोकवार्ता की पगडण्डियाँ, पृ0–160*
16. *भारतीय लोक साहित्य, पृ0–53*
17. *लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – विद्या चौहान पृ0 74*
18. *Chambers Encyclopaedia Vol. V.P. 765*
19. *लोकगीतों के संदर्भ और आयाम– डॉ0 शान्ति जैन, पृ0–6*
20. *वही*
21. *वही*
22. *डॉ0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित ''लोकगीतों में चित्रित जीवन के आदर्श'' सम्मेलन पत्रिका, भाग–47, अंक–3, आशाढ़–भाद्रपद, शक0–1883*
23. *8/71/14*
24. *वही 1/7/1*
25. *वही 7/18*

26. *3/7/3*
27. *मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डा0 तेजनारायण लाल, पृ0–21*
28. *भोजपुरी लोकगाथा, पृ0–20–21*
29. *वही पृ0–21*
30. *वही*
31. *वही*
32. *श्रीमद्भागवत– महापुराण द्वितीय खण्ड, दशम स्कन्ध पांचवा अध्याय पृ0 526*
33. *सम्पादक–पुश्पलाल सिंह पदावली–1, पृ0 287*
34. *सम्पादक नन्ददुलारे वाजपेयी पृ0–237*
35. *बालकाण्ड*
36. *जन्म खण्ड, पृ0–61*
37. *फिल्म तोहफा मोहब्बत का*
38. *फिल्म गदर*
39. *वही*
40. *मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' – विद्या निवास मिश्र, पृ0 104*
41. *कुँवर बैचेन द्वारा रचित।*
42. *रश्मि बंध– सुमित्रानन्दन पंत पृ0–56*
43. *कविता कौमुदी (परिवर्द्धित संस्करण) भाग–3 (ग्रामगीत) पृ0 78*